International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 12-05-2024, Accepted: 03-06-2024, Published: 26-06-2024
Volume 10, Issue 2, 2024, Page No. 21-23

हिंदी के दलित साहित्य में स्त्री जीवन

डॉ. मीनाक्षी गुप्ता
एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, श्री अरबिंद महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

सारांश
20वीं शताब्दी का 'छठवां दशक' साहित्य जगत के लिए बेहद उठा पटक और बदलाव का समय है। यह समय ज्ञान की अवस्था के बदलाव का समय है क्योंकि समाज व संस्कृति, इस समय उत्तर औद्योगिक युग और उत्तर आधुनिक युग में प्रवेश कर चुका था। यह समय महावृत्तांत के विरूद्ध का समय है, जिसके कारण नए विमर्शों का उदय होता हैं। भारतीय समाज प्रमुखतः लिंग– भेद के आधार पर, जाति के आधार पर, धर्म के आधार पर ही समाज का विभाजन करता है। चाहे हमारा संविधान कितना भी समानता और अस्पृश्यता को दूर करने की बात करता है पर समाज का विभाजन इन्हीं आधार पर किया जाता है। समाज के इन ठेकेदारों का मानना है कि स्त्रियों घर की चारदीवारियों में पर्दे में ही कैद ठीक लगती है। एक स्त्री की पहचान केवल माँ, पत्नी, बेटी के परिधि में ही सिमटी हुई हैं। स्त्री और निम्न जाति को मनु से लेकर अभी तक के इस लंबे दौर में हमेशा संघर्ष करना पड़ा है। लेकिन एक स्त्री और वो भी दलित वर्ग से हो तो उसके संघर्ष का अंदाजा लगाना बेहद मुश्किल है। दलित स्त्री को केंद्र में रख कर अनेक साहित्यिक रचना हुई जिसमें स्त्री के हीन दशा को दर्शाया गया है। जिसमें 'शोषण' जैसी घटना का वर्णन प्रमुख है। ऐसी अनेक स्त्रियाँ है जिनके साथ जबरन शारीरिक संबंध बनाए गए कई–कई बार उनका शोषण हुआ पर उसकी कोई सुनवाई नहीं हो पाई और यहां तक की एक स्त्री का शोषण होने के बाद बदनामी भी उसी की होती है। स्त्री शोषण को सहज और स्वाभाविक मान्यता के रूप में समाज के मन मसितष्क में बैठाने की निरंतर कोशिश की गई। समय–समय पर विभिन्न शक्तियों से गठजोड़ करके इसने अपना रूप भी बदला पर मौजदूगी सामन्तवादी व्यवस्था से लेकर पूंजीवादी और अब बाजारवादी व्यवस्था की आंतरिक संरचना में भी अनेक स्तरों पर बनी हुई है। इसका उद्देश्य स्त्री के वास्तविक अस्तित्त्व और स्वप्नों का सदा के लिए दमन करना और पौरुषपुर्ण वचस्ववादी समाज में स्त्री के लिए समानता और न्याय की संभावनाओं को समाप्त करना रहा है।

मूल शब्दः स्त्री जीवन, आधुनिक युग, अस्मिता विमर्श, दलित जीवन, समाज, संघर्ष

20वीं शताब्दी का 'छठवां दशक' साहित्य जगत के लिए बेहद उठा पटक और बदलाव का समय है। यह समय ज्ञान की अवस्था के बदलाव का समय है क्योंकि समाज व संस्कृति, इस समय उत्तर औद्योगिक युग और उत्तर आधुनिक युग में प्रवेश कर चुका था। यह समय महावृत्तांत के विरूद्ध का समय है, जिसके कारण नए विमर्शों का उदय होता हैं। ल्योतार लिखते हैं कि, ''उत्तर आधुनिकतावाद महावृत्तांत के विरूद्ध है। महावृत्तांत का अर्थ है ईसाइयत, मार्क्सवाद और वैज्ञानिक प्रगति का मिथ। इनके विरूद्ध अब छोटे–छोटे अस्मिता समूहों जैसे स्त्री विमर्श, दलित विमर्श आदि का उदय हो रहा हैं।''[1] जिसका अर्थ है जो संघर्षहीन समाज था, जो अपनी आँखे बंद करके दूसरों की रोशनी के सहारे चला था अब उसने अपनी आँखे खोल ली थी। सदियों से गला दबा कर जिनकी आवाज को बंद कर दिया गया था वो अब बोलने लगे थे और जिनके हाथ में झाड़ू सौपी गई थी अब उन्हीं हाथों ने कलम उठाना शुरू कर दिया। इसी समय से एक नये युग ओर नये विमर्शों की शुरुआत साहित्य की जमीन पर होती है।

विमर्श का अर्थः 'जीवंत बहस' है। रोहिणी अग्रवाल इस संदर्भ में लिखती हैं कि ''किसी भी समस्या या स्थिति को एक कोण से न देख कर भिन्न मानसिकताओं, दृष्टियों, संस्कारों और वैचारिक प्रतिबद्धताओं का समाहार करते हुए उलट–पुलट कर देखना, उसे समग्रता में समझने की कोशिश करना और फिर मानवीय संदर्भों में निष्कर्ष की प्राप्ति की चेष्टा करना विमर्श कहलाता हैं।[2] इन विमर्शों के उदय के साथ ही संघर्षहीन समाज को अपनी अस्मिता की पहचान करना थोड़ा आसान हुआ। अपनी अस्मिता की पहचान के लिए हाशिए का समाज आवाज उठाने लगा और यही आवाज कुछ ही समय में स्त्री विमर्श, दलित विमर्श और आदिवासी विमर्श का रूप लेकर के साहित्य में प्रतिष्ठित होता चला गया।

भारतीय समाज प्रमुखतः लिंगभेद के आधार पर, जाति के आधार पर, धर्म के आधार पर ही समाज का विभाजन करता है। चाहे हमारा संविधान कितना भी समानता और अस्पृश्यता को दूर करने की बात करता है पर समाज का विभाजन इन्हीं आधार पर किया जाता है। समाज के इन ठेकेदारों का मानना है कि स्त्रियों घर की चारदीवारियों में पर्दे में ही कैद ठीक लगती है। एक स्त्री की पहचान केवल माँ, पत्नी, बेटी के परिधि में ही सिमटी हुई हैं। समाज को चलाने का अधिकार केवल उच्च वर्ग की जाति को ही है। निम्न वर्ग के लोग केवल उच्च वर्ग की सेवा करने, उनके मल–मूत्र को साफ करने के लिए ही जन्में है।

समाज के इस संचालन प्रक्रिया में अहम भूमिका वेद और उपनिषदों की रही हैं। जिन्होंने समाज को चलाने के लिए कुछ नियम बनाए, परन्तु इन नियमों को लागू केवल स्त्रियों पर, निम्न जातियों पर ही किया गया। वैदिक साहित्य में स्त्री को 'यत्र नारिस्तु पूज्यते रमन्ते तत्र देवता' अर्थात् देवता का वास वही होता है जहां नारी की पूजा की जाती हो, परन्तु क्या वास्तव में यह बात सार्थक है? इस संदर्भ में 'जिया लाल आर्य' का कथन उचित लगता हैं कि ''नारियों को समाज ने जो भी स्थान पूज्यनीय, गृहिणी, अर्पस्यसूर्या दिया है वह कभी भी उसके हित के लिए नहीं, अपितु अपने किसी न किसी स्वार्थ (परोक्ष व अपरोक्ष) के लिए दिया गया और जब स्वार्थ की सिद्धि हो गई तब उसे पुनः पुनर्मुसको भवः' की स्थिति में रख दिया।[3]

स्त्री और निम्न जाति को मनु से लेकर अभी तक के इस लंबे दौर में हमेशा संघर्ष करना पड़ा है। लेकिन एक स्त्री और वो भी दलित वर्ग से हो तो उसके संघर्ष का अंदाजा लगाना बेहद मुश्किल है। दलित स्त्री के जीवन के यथार्थ को उजागर करते हुए अलका आर्य लिखती हैं कि ''अगर दलित परिवार में लड़की पैदा हुई है तो गांव के ठाकुर तथा दूसरे सवर्ण के लोगों के हरमों तक पहुँचने के लिए वह अभिशप्त है। उसका गर्भाशय वर्ण

और समाज के ऐसे ठेकेदारों की हवस मिटाने का डस्टबिन है जो जिस्म, आत्म दिन के उजाले में उनके लिए अछूत, डोम चमार है, वह रात में मोतियों के फूल की तरह महकता नजर आता है। उसे हासिल करने के लिए बदन बेकाबू हो उठता है।[4] इस टिप्पणी से यह अंदाजा लगाया जा सकता है कि समाज में दलित स्त्री होना कितना बड़ा गुनाह है। ताराशंकर बंधोपाध्याय अपने उपन्यास 'गणदेवता' में इसी सच को उद्घाटित करते है। इस उपन्यास में एक दलित स्त्री अपने पुत्री को रोजाना जमींदार के घर सफाई करने के लिए भेजती थी। एक दिन वो जमींदार उस लड़की के साथ जोर–जबर्दस्ती करता है और बाद में इसके बदले उसे कुछ मुआवजा देकर घटना को रफा–दफा करता है। परन्तु इस घटना की खबर जैसे ही सारे इलाके में फैलती है तो उस लड़की को मनचाहे ढंग से इस्तेमाल जमींदार वर्ग के लोग करते है। यह घटना समाज का सबसे बड़ा यथार्थ है,
जिसकी खबर सभी लोगों को है परन्तु कोई उसमें सुधार नहीं करना चाहता।
स्त्री होना समाज में सबसे बड़ा पाप माना जाता है। इस बात को अनुजा की एक कविता से समझा जा सकता है –

''बिटिया
मत जनमो तुम ...
मत जनमो कि
यहां कुछ भी नहीं है तुम्हारा
सब धरती
सारा आसमान
सारे पेड़
ये सारा जहान
कुछ भी नहीं तुम्हारा...
अस्तित्व तुम्हारा
जिसे बेटवा/आदमी
तब इस्तेमाल करता है जब खाली होता है....
जब वक्ट नहीं करता है...''[5]

दलित स्त्री होना उससे भी बड़ा पाप। जिसका केवल इस्तेमाल किया जाता है।
उसका अस्तित्व केवल उच्च वर्ग को शारीरिक सुख प्रदान करना है। 'संस्कार' उपन्यास में समाज के इस यथार्थ रूप को देखा जा सकता है। 'यू. आर. अनन्तमूर्ति' के उपन्यास 'संस्कार' में दक्षिण भारत के एक ब्राह्मण ग्राम की कथा जिसमें सभी ब्राह्मण शुद्र लोगों से अपना शरीर छूना भी पाप मानते है परन्तु 'चन्द्री और बेल्ली' जो की एक दलित स्त्री है उसके साथ सम्भोग करने की कल्पना सभी पंडित पुरुषों के मन में हमेशा बनी रहती है। वो उसके सौंदर्य की तुलना ब्राह्मण स्त्री से करते हुए कहते हैं कि ''पिचके गालों, सूखे स्तनों और मुंग–मसूर की दाल की बु से बसी ब्राह्मणों की कौनसी लड़की उसकी बराबरी कर सकती है?[6]'' इसी के साथ ब्राह्मण के असली चेहरे को अनन्तमूर्ति अपने इस उपन्यास में बताते है। जो ब्राह्मण दिन में अपने आप को देवताओं का पुजारी मानते है तथा पूजा–पाठ, कर्म–काण्ड करना ही जीवन का आधार मानते है वही रात के अँधेरे में किसी दूसरी स्त्री के साथ संबंध बनाने से भी नहीं चूकते है। आधी रात को श्रीपति जब बेल्ली से मिलने जाता है उसका वर्णन करते हुए लिखते हैं कि ''गरम पानी से नहाने के बाद नीचे एक छोटा–सा कपड़ा लपेटे और ऊपर बिल्कुल निर्वसना पीठ और मुख पर फैली हुई थी। वह दबे पाँव झोपड़ी से बाहर आई, फिर धीरे–धीरे झाड़ियों की ओट में चली गई। श्रीपति एक झाड़ के पीछे रुका और आँखों से ओझल होने तक उसे देखता रहा। जब इधर–उधर कोई दिखाई नहीं दिया तो बेल्ली के पास तुरन्त पहुँचा। एक बार टार्च जलाई फिर बुझा दी और उससे लिपट गया।''[7] इस उपन्यास में दलित स्त्री के सामाजिक सच को उजागर करते हुए अनन्तमूर्ति लिखते हैं कि ''बेल्ली केवल साथ सोने के लिए ही ठीक थी, बातें करने के लिए नहीं।[8]
दलित स्त्री को केंद्र में रख कर अनेक साहित्यिक रचना हुई जिसमें स्त्री के हीन दशा को दर्शाया गया है। जिसमें 'बलात्कार' जैसी घटना का वर्णन प्रमुख है। ऐसी अनेक स्त्रियाँ है जिनके साथ जबरन शारीरिक संबंध बनाए गए, कईकई बार उनका बलात्कार हुआ पर उसकी कोई सुनवाई नहीं हो पाई और यहां तक की एक स्त्री का बलात्कार होने के बाद बदनामी भी उसी की होती है। इसीलिए इनके जीवन के लिए 'अपराध कोई करे, दण्ड हमें मिले' जैसी बात ज्यादा सार्थक लगती है। इस बात को 'मिट्टी की सौगंध[9] उपन्यास से समझा जा सकता है जिसमें शीला के बलात्कार का वर्णन है। वह अपने घर में अपनी माँ के साथ बैठकर कुछ काम कर रही होती है तभी ठाकुर मदन सिंह आकर उसकी माँ के सामने ही जबर्दस्ती उसका बलात्कार करता है। दोनों चीखते है चिल्लाते है परन्तु कोई उनकी मदद के लिए नहीं आता है। अपनी आँखों के सामने अपनी बेटी की इज्जत लुट जाने की घटना से उसकी माँ को बड़ा आघात पहुँचता है जिससे कुछ ही दिनों में उसकी माँ की मृत्यु हो जाती है और शीला बिल्कुल असहाय और अनाथ हो जाती है। जिसने अपराध किया उसे तो कोई सजा नहीं मिलती लेकिन शीला की जिंदगी इस घटना से जरुर उजड़ जाती है।
दलित समाज में आज भी ऐसी घटनाएं होती है परन्तु उसकी कोई सुनवाई नहीं होती क्योंकि उनकी सहायता करने के लिए, इंसाफ दिलाने के लिए कोई भी उनके साथ नहीं है। उनकी ''हे पिता, हमें कब इस जेलखाने से निकाल के आजाद करेगा? हे प्रभु, हमको कौन से अपराध के दण्ड में इस बन्दीखाने में पैदा किया है? तेरे दरबार में हमेशा इन्साफ ही होता है लेकिन इन जन्मदुखियों के वास्ते कैसी बेइन्साफी है''[10] इस प्रार्थना को सुनने वाला कोई नहीं है उनकी मदद करने वाला कोई नहीं है।
उन्हें खुद अपने मदद के लिए हथियार उठाना पड़ेगा। अपनी रक्षा के लिए खुद स्त्री को दुर्गा का रूप लेना होगा। तभी उन्हें इस समाज के ठेकेदारों से स्वतंत्रता मिल पाएगी। स्त्री के इस विद्रोही रूप को अपने अनेक कहानियों एवं उपन्यास में साहित्यकारों ने दिखाया है। जिसमें वह अपनी रक्षा खुद करती है। उसमें डॉ. कुसुम मेघवाल की कहानियां प्रमुख हैं जिसमें स्त्री के प्रतिरोधी और विद्रोही रूप को देखा जा सकता है। 'मंगली' कहानी में मंगली को उसके ठेकेदार सर्वेट क्वार्टर देकर उसे अपने शोषण का शिकार बनाना चाहते है परन्तु मंगली इसका प्रतिरोध करती है तथा जलती हुई लकड़ी लेकर ठेकेदार के सिर पर प्रहार करके उसे घायल कर के अपनी इज्जत बचा लेती है। इसी तरह 'अंगारा' कहानी में इसकी नायिका जमना के साथ गांव के ठाकुर के ज्येष्ठ पुत्र सुमेर सिंह और उसके चाचा के जमना को अपने यौन शोषण का शिकार बनाते है। परन्तु कहानी के अंत में जमना दराती लेकर सुमेर सिंह पर हमला करके उसके पुरुषत्व के अंग को काट कर अपना बदला पूरा करती है।
दलित स्त्री के शोषण होने का एक कारण उसका निरक्षर होना है। उन्हें किसी कार्य को करने के लिए प्रेरित करने वाला कोई नहीं है। जिसके कारण उन्हें शोषण का शिकार होना पड़ता है और उस शोषण को ही अपने जीवन का अंग मान लेना पड़ता है। परन्तु 'मिट्टी की सौगंध' उपन्यास की नायिका 'शीला' ऐसी नहीं है। शीला की इज्जत लुट जाने के कारण उसकी माँ की मृत्यु हो जाती है। वह बिल्कुल अनाथ हो जाती है तब उसकी मौसी उसका सहारा बनती है और उसे ठाकुर मदन सिंह से बदला लेने के लिए उकसाती है ''मै तेरा दर्द समझती हूँ बिटिया, लेकिन... अगर तूने हिम्मत हारी तो कल को दूसरी शीला की इज्जत भी लुट जाएगी। किसी से बदला लेने के लिए अपने अंदर ताकत इकठ्ठा करनी होती है। तू इस जमात तक पढ़ी है।

तू टकरा सकती है उस ठाकुर रूपी कुत्ते से...।''[11] शीला अपनी मौसी की बात से ठाकुर से बदला लेने का मन बना लेती है। यह घटना केवल शीला के साथ नहीं हुआ था बल्कि गांव की और भी कई लड़कियों के साथ हुआ था। शीला के इस विद्रोही रूप के कारण अन्य लड़कियों के मन में भी ठाकुर से बदला लेने की प्रवृत्ति का उदय होता है।

देश की आजादी के बाद हाशिए के समाज को अपनी अस्मिता के पहचान के लिए एक लम्बा आंदोलन करना पड़ा है। परन्तु अभी भी सब कुछ ठीक नहीं हुआ लेकिन पहले से थोड़ा बेहतर जरुर हुआ है। अब दलित स्त्रियाँ भी स्कूल–कॉलेज में पढ़ने लगी है तथा पुरुषों के साथ कन्धे से कंधा मिलाकर चलने लगी है। डॉ. आर. एम. एस. विजयी के उपन्यास 'सैनिक का खून' उपन्यास में नारी के इस आधुनिक रूप को देखा जा सकता है। जिसमें कमला के माध्यम से साहसिक लड़की के रूप के साथ वाक्पट रूप तथा एक समझदार स्त्री का रूप हमें देखने को मिलता है। कमला जब कॉलेज से एक दिन घर आ रही थी तब रास्ते में दामोदर नाम का एक गुण्डा उससे साथ छेड़खानी करता है जिसका वह विरोध करती है और शोर मचाती है जिससे उसकी मदद के लिए कॉलेज के अन्य लोग आ जाते है। इस छेड़खानी की वजह से कमला, दामोदर के मुँह पर गुस्से से थूक देती है तथा उपदेशात्मक लहजे से उस पर बिगड़ते हुई कहती हैं ''तुम देश, मानवता, धर्म तथा समाज के नाम पर कलंक हो। तुम्हारे अपराध तुम्हारे विनाश की पृष्ठभूमि बना रहे हैं। ये उंगलियां जो दूसरे की बहु बेटियों की इज्जत लूटने चली, जिनके रिवाल्वर की गोली चलाकर निरपराध, भोले–भाले बच्चों, स्त्रियों तथा पुरुषों का खून किया, इन्हें ननिर्माण की ओर चलना चाहिए था। दुखी मानवता तथा देश की सेवा के लिए कर्म–कौशल दिखाते तो इंसान कहलाने के अधिकारी थे।''[12] और अंत में नारी की अपनी परिकल्पना के विषय में कहती हैं ''मै समझती हूं, नारी को अपनी इज्जत बचाने के लिए क्या करना चाहिए ? आधुनिक नारी इसमें समर्थ होती जा रही है। तुम्हारे जैसे गुण्डों के हाथ तोड़ने तथा आँख फोड़ने की हिम्मत उसमें होनी चाहिए।''[13]

दलित स्त्रियों के साथ हुए शोषण के कारण कई स्त्रियाँ आत्महत्या को ही अपना आखिरी फैसला मानती है परंतु आत्महत्या ही हर समस्या का समाधान नहीं है। आत्महत्या करने वालो के कारण ही ऐसे पाप करने वालो की संख्या बढ़ती जा रही है। परंतु 'सैनिक का खून' उपन्यास की नायिका कमला आत्महत्या को सबसे बड़ा पाप मानती है तथा कांता को सांत्वना देते हुए कहती हैं कि ''आत्महत्या सबसे बड़ा पाप है। तुम अभागिन नहीं हो। अभागा वह है जिसने स्वार्थों की आड़ में दुराचार के खून में रंगकर मानवता को दुःखी बनाया है और वह अपनी बुरी प्रवृत्ति को चाहते हुए भी छोड़ने में असमर्थ है...।''[14] पुरुष प्रधान समाज में स्त्री को हर स्तर पर संघर्ष करना पड़ता है। कहीं उसके साथ बलत्कार होता है, तो कभी कभी उन्हें कोठों पर बेंच दिया जाता है, कभी इन सब दुष्कर्मो के बाद उनकी हत्या हो जाती है नहीं तो खुद आत्महत्या कर लेते है। लेकिन इन तमाम मुसीबतों का हल केवल आत्महत्या नहीं है, इन मुसीबतों से मुक्ति उन्हें लड़कर, खुद हथियार उठा कर ही मिल सकती है। कमला जैसी सोच हर स्त्री में विकसित होनी चाहिए ताकि वो अपनी अस्मिता की रक्षा खुद कर सके, और अपने भविष्य को अच्छा बना सके।

मनुवाद से बाजारवाद तक की इस यात्रा में स्त्री को हमेशा संघर्ष करना पड़ा है। वर्तमान में जरुर स्त्री को अपनी पहचान मिली है परंतु अभी भी अपनी पूर्ण पहचान बनाने के लिये उसका संघर्ष जारी है। स्त्री के संघर्ष में साहित्यकारों की विशिष्ट भूमिका रही है। जिन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से स्त्री को अपनी एक आवाज दी है, ताकि जो दर्द इनको सहना पड़ा है वो आने वाली पीढ़ी का न सहना पड़े।

निष्कर्ष

अंततः कहा जा सकता है की दलित साहित्य परिवर्तनकामी साहित्य है, जो प्रत्येक व्यक्ति के गरिमामयी व्यक्तित्व और समाज में समता एवं बंधुता के लिए कृतसंकल्प है। इन सभी रूढ़िवादी व्यवस्थाओं और सदियों से चल रहे सुनियोजित शोषण उत्पीड़न के विरुद्ध विश्व भर के वैचारिक चिंतन में विमर्श ने एक नया आयाम और परिप्रेक्ष्य निर्मित किया। किसी भी वर्ग की स्त्री हो या चाहे वो दलित साहित्य में स्त्री की समस्या हो या स्त्री विमर्श में। स्त्री हमेशा से शोषित होती आ रही है और आज़ भी हो रही है। स्त्री शोषण को सहज और स्वाभाविक मान्यता के रूप में समाज के मन– मसित्ष्क में बैठाने की निरंतर कोशिश की गई। समय–समय पर विभिन्न शक्तियों से गठजोड़ करके इसने अपना रूप भी बदला पर मौजदूगी सामन्तवादी व्यवस्था से लेकर पूंजीवादी और अब बाजारवादी व्यवस्था की आंतरिक संरचना में भी अनेक स्तरों पर बनी हुई है। इसका उद्देश्य स्त्री के वास्तविक अस्तित्व और स्वप्नों का सदा के लिए दमन करना और पौरुषपुर्ण वचस्ववादी समाज में स्त्री के लिए समानता और न्याय की संभावनाओं को समाप्त करना रहा है।

संदर्भ सूची

1. द पोस्ट मॉडर्न कंडिशनः ए रिपोर्ट आन नालेज – फ्रांकोइस ल्योतार
2. साहित्य का स्त्री स्वर – रोहिणी अग्रवाल, पृष्ठ संख्या–07
3. दलित चेतना रू सोच सं. रमणिका गुप्ता, पृष्ठ संख्या 168
4. बलित प्रसंग – सं. प्रणव कुमार वंद्योपाध्याय, पृष्ठ संख्या 164
5. उत्तर प्रदेश, मार्च 2003, पृष्ठ संख्या–172
6. संस्कार – यू.आर. अनंतमूर्ति, पृष्ठ संख्या 46
7. संस्कार – यू.आर. अनंतमूर्ति, पृष्ठ संख्या 48
8. संस्कार – यू.आर. अनंतमूर्ति, पृष्ठ संख्या 49
9. १. मिट्टी की सौगंध – प्रेम कपाड़िया
10. सीमं तनी उपदेश – अज्ञात हिंदू महिला, पृष्ठ संख्या–41
11. मिट्टी की सौगंध – प्रेम कपाड़िया, पृष्ठ संख्या–08
12. सैनिक का खून – डॉ. आर.एम.एस. विजयी, पृष्ठ संख्या–37
13. सैनिक का खून – डॉ.आर.एम.एस. विजयी, पृष्ठ संख्या–37
14. सैनिक का खून – डॉ. आर. एम. एस. विजयी, पृष्ठ संख्या–57